'जैन विचार क्रांति' के आधारभूत सिद्धांत

भारत जैन महामण्डल, जयपुर में ओशो का प्रवचन, सन 1962

भारत जैन महामंडल के इस 37वें खुले-अधिवेशन में कुछ बातें 'जैन जीवन दर्शन' पर और 'जैन विचार क्रांति' के आधारभूत सिद्धांतों के संबंध में मैं आपसे कहूँ। यह चर्चा इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि हम जैन हैं और हम केवल जैन विचारधाराओं का अनुमोदन करें बल्कि इसलिए महत्वपूर्ण है कि इस युग को, इस अशांत और बेचैन सदी को जैन विचार पद्धति से प्रकाश मिल सकता है। यदि हम अंधेरे में हैं तो अंधेरे से मुक्त होने के समस्त उपाय हमारे लिए उपयोगी और स्वागत योग्य होंगे।

जैनों ने आत्मिक शांति और आनंद की दिशा में जो गहन प्रयोग किए हैं, वे आज के युग के लिए कारगर साबित हो सकते हैं। लेकिन वे प्रयोग केवल मौखिक या सैद्धांतिक रूप से काम नहीं आएंगे। केवल कहने या मानने मात्र से अहिंसा फलित नहीं होगी। किसी व्यक्ति को उसका संप्रदाय छोड़ने के लिए भी बाध्य नहीं किया जा सकता है। यह ऐसा ही है जैसे किसी ज्वर ग्रस्त व्यक्ति से हम कहें कि तुम अपना बुखार छोड़ दो। बुखार छोड़ा नहीं जाता, उसके लिए उपाय करना पड़ता है। किसी संप्रदाय विशेष को छोड़ देना भी कोई हल नहीं है। वास्तव में, संप्रदाय पैदा ही क्यों होते हैं? हमारे मन की भीतरी गांठों से संप्रदाय को जन्म मिलता है। जब तक अंदर की गांठ समाप्त नहीं होगी तब तक हमारे सब महत्वपूर्ण प्रस्ताव कचरे की टोकरी में फेंक दिए जाएंगे, उनका कोई अर्थ नहीं होगा। लेकिन सबसे विचारणीय प्रश्न यह है कि आदमी हिंसक है क्यों? और उसके मन में कौन सी जगह है, जहां से हिंसा को जन्म मिलता है? कुछ बुनियादी बातों को और इस क्रांति के विज्ञान को समझना होगा।

मैं आपसे स्पष्टतः कहता हूं कि जैन दर्शन का मूल आधार अहिंसा नहीं है।

आप विचलित न हों, मैं इस बात को समझाना चाहता हूं कि अहिंसा किसी धर्म का मूल आधार नहीं हो सकती है। अहिंसा उपलब्धि है, अहिंसा साधना नहीं है। एक किसान अपने बगीचे में बीज बोता है, पानी देता है, खाद डालता है, सूरज की रोशनी मिलती है, पौधा बड़ा होता है उस पर फूल आते हैं। फूल अंतिम उपलब्धि है। फूल सीधे ही नहीं मिल जाते हैं, फूल पाने के लिए कुछ श्रम करना पड़ता है। अहिंसा जीवन की उपलब्धि है। स्वयं पर कुछ श्रम करना होता है, उससे अहिंसा फलित होती है।

एक कहानी के माध्यम से इसे अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

आधुनिक युग के एक बहुत बडे विचारक 'माओत्से तुंग' ने अपने बचपन की एक घटना लिखी है। उन्होंने लिखा है- जब मैं बच्चा था तब मेरी मां के पास एक छोटी सी बगिया थी। एक बार मां बीमार पड़ गई और मैंने मां से कहा, घबराओ मत, बगिया की देखभाल मैं कर लूंगा, तुम केवल आराम करो। मां बीमारी के कारण मकान के भीतर ही रहती थी, कमजोरी के कारण उसका मकान के बाहर आना संभव नहीं था। लगभग पंद्रह दिन बाद मां ठीक हुई और बाहर आई। उसने देखा कि बगिया का तो बुरा हाल हो गया है। उसने माओ से पूछा कि यह सब क्या हुआ? माओ, तुम तो रोज मेहनत करते थे और अच्छे से देखभाल करते थे, फिर यह कैसे हुआ?

माओ ने कहा, हाँ! मैं हर फूल को पानी से धोता था... पर पता नहीं क्यों यह बगिया सूखती गई?

मां ने कहा फूल के प्राण जड़ में होते हैं, फूल को पानी देने से कोई मतलब नहीं है।

यदि जड़ को भूल जाएंगे तो फूल कैसे जीवित रहेगा?

अहिंसा; जैन जीवन दर्शन की साधना का प्रारंभ नहीं, अपितु परिणाम है। अहिंसा फूल है, जड़ कहीं और है। पिछले 5000 वर्षों में अहिंसा के सिद्धांत को सही मायने में प्रेषित न कर पाने का मूल कारण, गलत शुरूआत है। हम लोगों से कहते हैं कि अहिंसक हो जाओ परंतु हम यह भूल जाते हैं कि अहिंसक हो जाना किसी और ही बात से संबंधित है। इन 5000 वर्षों में हर धर्म ने अहिंसा का इतना प्रचार किया है फिर भी यह भ्रांति है कि अहिंसा जैसे विषय पर उचित साहित्य कम मात्रा में उपलब्ध है। हिंदी में साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, संस्कृत में साहित्य की भरमार है। परंतु, केवल साहित्य पढ़कर कोई अहिंसक नहीं होता है। यदि केवल साहित्य पढ़ने से कोई अहिंसक होता हो, तो बात बहुत आसान हो गई होती। असल बात कुछ और है, और उसके लिए थोड़ी चर्चा करना जरूरी है।

मैं सविनय आपसे कहता हूं कि महावीर ने अपने जीवन में वास्तव में जो किया था वह कुछ और ही था परंतु धर्मांधता ने हमें कुछ और ही दिखाया है। हमें केवल फूल दिखाई पड़ते हैं, जमीन के नीचे की जड़ दिखाई नहीं पड़ती। महावीर के जीवन में जब अहिंसा प्रकट हुई, जब फूल खिले, तब हमने उन्हें पूजना शुरू किया। हमें यह तो दिखाई दिया कि महावीर के जीवन में अहिंसा है, प्रेम है, ब्रह्मचर्य है, सत्य है। लेकिन क्या कभी इस बात पर गौर किया गया है कि महावीर ने ऐसा क्या किया कि जिससे महावीर की हिंसा चली गई और अहिंसा आई? जिससे महावीर का अब्रह्मचर्य चला गया और ब्रह्मचर्य आया, जिससे महावीर का असत्य चला गया और सत्य आया? वास्तव में, महावीर के आंतरिक जीवन में ऐसी कौन सी घटना घटी जिससे उनके बाह्य जीवन में अहिंसा का अवतरण हुआ?

यदि हम यह मूल बात नहीं समझेंगे, यदि महावीर के भीतर घटने वाले अनुभवों को नहीं समझेंगे और उनके भीतर के रासायनिक परिवर्तनों को नहीं समझेंगे तो हम महावीर को पूजने के बावजूद अहिंसक नहीं हो सकेंगे। यदि एक कमरे में अंधेरा भरा हो और लोग तलवारें लेकर पूरी ताकत से अंधेरे को काट-काट के बाहर निकालने की कोशिश करें तो थोड़ी ही देर में वे थक जाएंगे। अंधेरा वहीं का वहीं रहेगा। अंधेरे को मिटाने का कोई रास्ता नहीं है। अंधेरे को धक्का लगाकर अलग नहीं किया जा सकता है। अंधेरे को गठरी बांध कर बाहर नहीं फेंका जा सकता है। अंधेरे के साथ की गई कोई भी ऐसी मेहनत बेकार जाएगी, ऐसा करना नासमझी है, मूर्खता है।

हिंसा भी अंधेरे की तरह नकारात्मक है, जीवन की समस्त बुराईयां नकारात्मक हैं। असत्य, घृणा, ईर्ष्या और अब्रह्मचर्य को भी अंधेरे की तरह बाहर नहीं फेंका जा सकता है। लेकिन अगर एक छोटा सा दीपक जला दिया जाए तो अंधेरा टिक नहीं पाएगा। अंधेरा शरीर की मेहनत से बाहर नहीं गया बल्कि दीपक के जलने के कारण समाप्त हो गया।

ऐसे ही एक छोटी सी आत्मिक क्रांति की किरण प्रकाशित होने पर समस्त हिंसा समाप्त हो जाती है। वह आत्मिक किरण ध्यान के माध्यम से प्रकाशित होती है।

समस्त धर्मों का मूल आधार ध्यान है। महावीर की साधना का भी मूल आधार ध्यान है। 12 वर्षों की अवधि में महावीर ने अपने आंतरिक जीवन में ध्यान की घटना का साक्षात्कार किया। ध्यान की घटना के परिणामस्वरूप ही अहिंसा उपलब्ध होती है।

ध्यान कैसे घटित हो सकता है? इस संबंध में थोड़ी सी चर्चा आपसे करूंगा।

भारत का जैन महामंडल या कोई भी ऐसी संस्था जो जगत में अहिंसा के वातावरण को उदित होते हुए देखना चाहती है तो उन्हें जैन जीवन दर्शन की बुनियादी ध्यान पद्धति को पुनः स्थापित करना होगा। इससे न केवल जैन समुदाय बल्कि अन्य समुदाय और समाज भी प्रकाशित होंगे।

एक जगह अचौर्य पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए मुझे आमंत्रित किया गया था। वहां करीब 300 लोग थे। मैंने उन सब से पूछा कि यहां पर आप में से कितने लोग चोर हैं? किसी ने हाथ ही नहीं उठाया और सब हैरान हुए! मैंने कहा, यहां कोई चोर ही नहीं है तो फिर क्यों समझाना और किसको समझाना कि चोरी करना बुरी बात है? बेहतर होगा कि मैं किसी कैदखाने में अचौर्य जैसी बात को समझाऊं।

जब भी कोई संस्था या कोई व्यक्ति दूसरों के सुधार के लिए प्रस्ताव पास करे तो वह संस्था अथवा व्यक्ति मुर्दा है। उसमें प्राण नहीं हो सकते। जो लोग भारत जैन महामंडल के भीतर हैं और वे नए मित्रों को भी इस महामंडल के भीतर लाना चाहते हैं, वे वास्तव में नए मित्रों से क्या उम्मीद करते हैं? क्या परिवर्तन चाहते हैं? क्या फर्क देखना चाहते हैं? नए लोगों के जीवन में ऐसी कौन सी क्रांति आप लाना चाहते हैं? अगर इसके लिए आपके पास कोई योजना नहीं है, ठोस विधि नहीं है और जब तक आप स्वयं उस का प्रमाण नहीं हैं, तब तक आपकी सारी की सारी संस्था किताबी और कागजी है, इसमें प्राण नहीं हो सकते।

किसी भी धार्मिक संस्था में आज तक मैंने ऐसा प्रस्ताव नहीं सुना है जो स्वयं के संबंध में विचारणीय हो। धार्मिक संस्था का हिस्सा बनते ही आप समस्त दुनिया को बदलना चाहते हैं, क्योंकि आप इस भ्रांति में होते हैं कि हम तो बिल्कुल बदल चुके हैं। मैं बहुत लोगों से मिलता हूं और मैं इस बात से हैरान होता हूं कि मुझे आज तक एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला है जिसे खुद को बदलने की फिक्र हो। सब लोग दूसरों को बदलने की फिक्र रखते हैं।

ऐसी सोच... यह गणित ही गलत है। मैं अपने पड़ोसी को बदलना चाहता हूं। मेरा पड़ोसी अपने पड़ोसी को बदलना चाहता है और वह पड़ोसी अपने अगले पड़ोसियों को बदलना चाहता है। यही कारण है कि दुनिया में कोई बदलाव नहीं होता क्योंकि बदलाव की शुरुआत स्वयं से होती है। मेरे अनुसार, अहिंसा, ध्यान के द्वारा उत्पन्न होती है। मेरी राय में, भारत जैन महामंडल में जो नए लोग सम्मिलित होते हैं, उनसे सदस्यता शुल्क लेने की बजाय, यह प्रतिज्ञा लेनी चाहिए कि वे इस जैन महामंडल की ध्यान की पद्धति को अपने जीवन में उतारेंगे। सदस्यता की एक ही शर्त होनी चाहिए कि जो ध्यान-पद्धति को अपने जीवन में उतारेगा वही व्यक्ति भारत जैन महामंडल का सदस्य होगा। ध्यान जैसे-जैसे व्यक्ति के जीवन में उतरेगा, वैसे-वैसे अहिंसा फलित होगी और पहली बार व्यक्ति को अनुभव होगा कि ध्यान के परिणामस्वरूप अहिंसा का उदय होता है।

जब मैं अपने भीतर शांत होता हूं, भीतर विचार का प्रवाह रुकता है, तब आंतरिक जगत में शांति के नए द्वार खुलते हैं और उस शांत अवस्था में हिंसा करना असंभव हो जाता है। उस आंतरिक शांति के बदले में हिंसा को चुनना निपट मूर्खता है। यदि मुझमें नाम मात्र भी समझ है तो मैं अपनी अमूल्य शांति को छोड़कर हिंसा जैसी पाशविक वृत्ति को कैसे चुन सकता हूं? इसी चुनाव के कारण धीरे-धीरे अनायास ही मैं महसूस करता हूं कि मेरी बाहर की हिंसा कम होती जा रही है।

अतः आप दुनिया को यह मत समझाएं कि अहिंसक होना है। ऐसा सुझाव देने से स्पष्ट आभास होता है कि आप दूसरों को कन्वर्ट करने वाले लोग हैं। अत्यंत हर्ष और गर्व के साथ लोग कहते हैं कि हमने खटीक समुदाय को बदल दिया है। वास्तव में यह अपमानजनक बात है। जैसे बेचारा खटीक समुदाय किसी अंधेरी खाई में था, जैसे वे बड़े बुरे लोग थे और उन्हें बदलकर हमने बड़ा महत्वपूर्ण काम कर लिया। ईसाई समुदाय भी ऐसे ही सोचता है कि हमने कुछ जैनियों को ईसाई बनाकर बहुत बड़ी बात कर ली है। हिंदु भी ऐसा ही सोचते हैं कि हमने कुछ ईसाईयों को हिंदु बनाकर बहुत बड़ी बात कर ली है। नहीं, यह एकदम नासमझी की बातें हैं। यह कोई बड़ी महत्वपूर्ण बात नहीं है, इसमें कुछ भी अर्थपूर्ण नहीं है। किसी को बदल लेने में कौन सी खूबी है? आप

खटीक समुदाय या जैन समुदाय या ईसाई समुदाय या हिंदु समुदाय को किसी और समुदाय जैसा बना भी लेगें, तो कौन सी श्रेष्ठ बात सिद्ध हो जाती है?

महत्वपूर्ण सवाल यह है कि हम जिस भी धर्म का अनुगमन कर रहे हैं, उसकी संपूर्ण वैज्ञानिक पद्धति को समझना चाहिए, क्योंकि संपूर्ण समझ के पश्चात आपको प्रयोग करने में तनिक मात्र भी कठिनाई नहीं होगी। वस्तुतः प्रत्येक धर्म, परिणामस्वरूप आनंद प्रदान करता है। धर्म की साधना कष्टप्रद नहीं होती है। धर्म की साधना कठिन भी नहीं होती है। धर्म की साधना को ठीक से समझकर प्रयोग किया जाये तो साधना के प्रत्येक चरण पर क्रमशः आनंद बढ़ता चला जाता है। आनंद का वही आकर्षण आपको और गहरी साधना की तरफ ले जाता है। अतः यह भ्रांति मन से निकाल दें कि धर्म की साधना कठिन है, कि तपश्चर्या दुरूह है। साधना केवल कोई विशिष्ट व्यक्ति ही कर सकता है, यह बात बिल्कुल गलत है। और, जिन लोगों ने ऐसा कहा है उन्होंने दुनिया का बहुत नुकसान किया है, मानव जाति का अहित किया है। जब बार-बार यह दोहराया जाता है कि साधना अत्यंत कठिन होती है, तब परिणामस्वरूप सचमुच साधना कठिन हो जाती है।

पश्चिम में कुछ महान मनोवैज्ञानिक प्रयोग किये गए हैं। फ्रांस के दो मनोवैज्ञानिकों ने फ्रांसीसी हुकूमत से कहा कि एक प्रयोग के तहत हम किसी आदमी को मानसिक तल पर मार के देखना चाहते है, कुछ निरीक्षण करना चाहते हैं। वहां के कैदखाने में एक आदमी को फाँसी की सजा हुई थी, अतः उसी आदमी को उन्होंने हुकूमत से माँग लिया। हुकूमत ने कहा- हमने तो इसको फांसी देनी ही है, इसकी मृत्यु निश्चित है, तो आप इस व्यक्ति पर प्रयोग कर सकते हैं। शायद आपके प्रयोग द्वारा यह सरल तरीके से मर सके और फांसी के फंदे द्वारा इसकी दर्दनाक मौत न हो। उन दोनों मनोवैज्ञार्निको ने उस आदमी को, जिसे फाँसी की सजा सुनाई जा चुकी थी, शाम को कहा कि सुबह छः बजे हम तुम्हें मार डालेगें और मारने की एक नई तरकीब निकाली है। हम तुम्हे आँख पर पट्टी बाँध कर लिटा देगें और तुम्हारे दोनों हाथों पर एक छेद करेगें और उस छेद से खून को आहिस्ता-आहिस्ता बाहर खींच लेगे। लगभग बीस मिनट के अंदर, तुम्हारा सारा खून शरीर से बाहर निकल जायेगा और तुम्हारी साँस अपने आप बंद होने लगेगी। इस तरह से तुम्हारी मृत्यु बहुत सुखद होगी और तुम्हें कोई तकलीफ भी नहीं होगी।

वह आदमी रातभर सोचता रहा कि सुबह इस ढंग से मृत्यु होगी क्योंकि मृत्यु की रात कोई कैसे सो सकता है? अतः रात भर वह सोचता रहा और इस बात का उसके मन पर बड़ा गहरा असर पड़ा। सुबह उसे उठाया गया, छः बजे उसकी आँख पर पट्टी बाँधी गई। उसे लिटाने के बाद उसके हाथों को नुकीले औजारों से छूते हुए, उसके पास में ही ऐसे अन्य औजारों की आवाजें की गइंर् जिनसे छेद किए जाते हैं। लेकिन वास्तव में छेद नहीं किये गए थे, केवल आवाजें थीं। पास ही पतली नलियों से धीमे-धीमे कुनकुना पानी बहाया गया और उस कुनकुने पानी को बाल्टियों में ऊपर से टपकाया गया, जैसे खून टपक रहा हो। टप-टप-टप आवाज़ आने लगी। वह कैदी जो लेटा हुआ था, सोचने लगा कि खून धीरे-धीरे बाहर जा रहा है। वहीं पास में चार डॉक्टर उपस्थित थे जो हृदय की नाड़ियों की जाँच करते हुए लगातार बोलते जा रहे थे कि बस अब साँस डूब रही है, डूब रही है। हृदय की धड़कन बंद हो रही है। साँस डूब रही है, खून बाहर निकल रहा है। लगभग दस मिनट बाद उन्होंने कहा कि यह आदमी आधा मर चुका है। उस आदमी ने भी यही सोचा कि मैं आधा मर गया हूँ। और ठीक 20 मिनट में उसकी साँस टूट गई। डॉक्टर यह भी बोलते जा रहे थे कि मृत्यु बहुत सुखद होगी, तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी।

दरअसल बीस मिनट तक उसका एक बूंद खून भी नहीं निकाला गया था। उसे किसी ने छुआ तक नहीं था। लेकिन बार-बार यह कहने पर कि वह मर रहा है, उसने भी यही सोचना प्रारंभ कर दिया कि मैं मर रहा हूँ

और वह सच में ही मर गया। क्योंकि उसने इतनी त्वरा से यह बात सोची, इसीलिए यह घटना घट गई। हम जो बात लोगों से बार-बार कहते रहते हैं, उसका विचार उनके मन में बैठ जाता है और मन को परिवर्तित कर देता है। 'धर्म की साधना अत्यंत कठिन है'- यह बात सदियों से इतनी बार दोहराई गई है कि सचमुच लोग यह समझने लगे हैं कि साधना कठिन होती है।

वास्तव में धर्म की साधना बहुत सरल है। यदि ठीक से विधि और तकनीक समझ आ जाये तो धर्म की साधना अत्यंत आनंदपूर्ण हो सकती है। इसी आनंद से जीवन में हिंसा असंभव होती चली जाती है। अब्रह्मचर्य भी असंभव होता जाता है, असत्य भी असंभव होता जाता है। क्योंकि भीतर जो शांति उपलब्ध होती है उसके विपरीत यह सब करना मुश्किल हो जाता है। पंरतु वो तकनीक क्या है? महावीर ने कैसे स्वयं को पाया? बुद्ध ने कैसे स्वयं को पाया? ईसा ने कैसे कहा कि मैंने प्रभु के राज्य को उपलब्ध कर लिया है? इसका एक ही सूक्ष्म और सरल उपाय है जो सब के लिए सुगम है।

महावीर ने अपने भीतर ऐसा क्या किया था जो हम अपने भीतर नहीं कर पा रहे हैं?

थोड़ा ध्यान से विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि हमारा मस्तिष्क बहुत विचारों से भरा हुआ है। उठते, बैठते, सोते, जागते, हर समय मन में विचार दौड़ रहे हैं। स्वप्न और विचार की प्रक्रिया मन को जकड़े हुए है और यह प्रक्रिया इतनी घनीभूत है कि हम स्वयं के भीतर नहीं उतर पाते हैं। हम अपने स्वरूप तक नहीं पहुँच पाते हैं। मानो बीच में विचारों की एक बड़ी दीवार है। जब भी हम स्वयं के भीतर जाने का प्रयास करते हैं तो पाते हैं कि वहां विचार ही विचार हैं।

पश्चिम के एक बहुत प्रसिद्ध दार्शनिक ह्यूम ने लिखा है, कि लोग कहते हैं कि भीतर झांको! लेकिन जब भी मैं भीतर झाँकता हूँ, हमेशा किसी विचार से टकरा जाता हूँ। कभी किसी इच्छा से या कभी किसी वासना से टकरा जाता हूं। लेकिन मेरी आत्मा मुझे उपलब्ध नहीं हो पाती है।

आप भी अपने भीतर जाएंगे तो पाएंगे कि कोई विचार, इच्छा या वासना ही मिलती है। आत्मा उपलब्ध नहीं होती और आप उस विचार की दीवार से टकराकर ही वापिस लौट आते हैं। इस प्रकार हर प्रयास में आप आत्म-ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। बीच में विचारों का यह जो पर्दा है, इसे गिरा देना जरूरी है ताकि हम स्वयं तक पहुंच सकें और अपने स्वरूप को उपलब्ध कर सकें। यह पर्दा ध्यान के द्वारा ही गिराया जा सकता है।

ध्यान का अर्थ एकाग्रता नहीं है। ध्यान का अर्थ हैः विचार-शांति और विचार-मुक्ति। बहुत लोग जब ध्यान करने बैठते हैं तो वह विचारों से लड़ते है। विचारों से लड़ना अवैज्ञानिक है। जो विचारों से लड़ेगा, वह विचारों से कभी भी मुक्त नहीं हो सकेगा।

एक छोटी सी कहानी आपसे कहूं। पश्चिम के एक होटल की कहानी है। एक बार एक यात्री उस होटल में कमरा लेने आया। उस होटल के मालिक ने कहा कि मेरे होटल में जगह कम है और दूसरी मंजिल पर केवल एक ही कमरा खाली है। वह कमरा मैं आपको नहीं दे सकता क्योंकि उस कमरे के ठीक नीचे एक उपद्रवी सज्जन ठहरे हुए हैं। अगर आपने थोड़ी सी भी खटपट की तो वह नीचे वाला आदमी झगड़ा करेगा। इसलिए बेहतर है कि आप कहीं और ठहर जायें।

उस यात्री ने कहा, मुझे रात में केवल 4-5 घंटे आराम करना है। सुबह जल्दी उठके चला जाऊंगा। आप घबराएं नहीं, कोई उपद्रव नहीं होगा।

उसे होटल में कमरा मिल गया। वह जैसे ही बिस्तर पर बैठा, उसने जूते खोले और एक जूता जोर से पटका। जूता पटकते ही उसे ख्याल आया कि नीचे वाले आदमी की नींद ना टूट जाए, अन्यथा रात में झगड़ा

होगा! अतः दूसरा जूता उसने आहिस्ता से खोलकर नीचे रखा और वह सो गया। लगभग दो घंटे बाद नीचे वाले आदमी ने आकर दरवाजा खटखटाया- महाशय, दरवाजा खोलिए!

वह यात्री बहुत हैरान हुआ कि जूते की आवाज हुए तो दो घंटे बीत गए। अब दो घंटे बाद यह आदमी क्या करने आया है? अब इसकी नींद कैसे खराब हुई? मैंने तो कुछ नहीं किया। फिर भी यात्री ने दरवाजा खोला।

दरवाजा खुलते ही उस नीचे वाले आदमी ने पूछा कि दूसरे जूते का क्या हुआ?

उस आदमी ने कहा- दूसरा जूता? वह तो मैंने आहिस्ता से रख दिया था। इसमें कोई भूल हुई क्या?

दूसरे आदमी ने कहा- भूल? जब पहला जूता गिरा, मैंने सोचा कि कोई सज्जन कमरे में आ गए हैं और जब बहुत देर तक दूसरा जूता गिरने की आवाज ही नहीं आई तो मैं बहुत हैरान हुआ! मैंने इस विचार को अपने मन से हटाने का भरसक प्रयत्न किया कि भई, मुझे किसी के जूते से क्या लेना-देना? परंतु मुझे वह दूसरे जूते की समस्या सताती रही। जितना मैं विचार को हटाने की कोशिश कर रहा था, उतना ही वह विचार दुगने वेग से मेरे मन में आने लगा।

अगर आप भी विचारों को धक्का देने की कोशिश करेंगे तो यही घटना घटित होगी। मन के भीतर से किसी विचार को धक्के देकर नहीं निकाला जा सकता है। मन के विचारों के प्रति साक्षी चेतना पैदा करने से और मन के विचारों को शांत होकर देखने से आहिस्ता-आहिस्ता विचार गिरते चले जाते हैं। यही सम्यक दृष्टि और सम्यक दर्शन है।

मैं आपको देख रहा हूँ। सिर्फ आपको देख रहा हूँ, देखने से मुझे पता चलता है कि आप अलग हैं और मैं अलग हूँ। क्योंकि देखने वाला दृश्य से अलग होता है। यदि आप अपने विचारों को बिना विरोध और छेड़छाड़ के देखेंगे तो आप पाएंगे कि आप में एक नई चेतना का उदय हो रहा है। आप में एक दृष्टा का उदय हो रहा है। और आप अनुभव कर पा रहे हैं कि विचार मुझसे अलग हैं और मैं विचार से अलग हूं। यह प्रतीति कि मैं विचार से अलग हूँ, मैं मन नहीं हूँ, मनुष्य को एक शांत झील रूपी दर्पण में बदल देती है। उसी शांत दर्पण में आत्मबोध, आत्मज्ञान का उदय होता है और हम स्वयं से परिचित होते हैं।

स्वयं से परिचित होना अद्भुत आनंद है, स्वयं में स्थित होने पर अद्भुत शांति मिलती है। जो स्वयं से परिचित हो जाता है, वह दूसरों से भी परिचित हो जाता है क्योंकि जो मेरे भीतर विद्यमान है वही आपके भीतर भी विद्यमान है। जिस दिन मैं यह देखता हूँ कि जो मैं हूँ वही तुम भी हो, उसी दिन मैं अहिंसक हो जाता हूँ। दिन नहीं, वरन उसी क्षण मैं अहिंसक हो जाता हूँ। क्योंकि मैं स्वयं को कैसे चोट पहुँचा सकता हूं? कोई व्यक्ति स्वयं को चोट नहीं पहुँचाता है।

महावीर अहिंसक थे क्योंकि जो उन्होंने अपने भीतर देखा वही सबके भीतर देखा। जो बोध उन्हें अपने भीतर हो रहा था, वही बोध सर्वत्र हो रहा था। अब महावीर के लिए हिंसा करना कठिन था। ऐसी शांत अवस्था में आदमी अनिवार्यतः अहिंसक हो जाता है। मांस मछली छोड़ देने से, पानी छान के पीने से, मांसाहार न करने से कोई अहिंसक नहीं होता। बुनियादी रूप से कोई भी चेतना अहिंसक तब होती है जब उसके भीतर समता का उदय होता है और जब उसे यह दिखाई देता है कि जो मैं हूँ, वही दूसरी तरफ भी है।

अगर हम दुनिया भर के लोगों को अहिंसक देखना चाहते हैं तो महावीर की ध्यान पद्धति को दुनिया भर के लोगों तक पहुँचाना अनिवार्य है। अगर हम उस ध्यान पद्धति को लोगों तक पहुँचा देते हैं तो बिना किसी का धर्म परिवर्तन किए, लोग भीतर से जैन यानि अहिंसक बन ही जाएंगे। बाहरी तौर पर किसी का धर्म बदल कर उसे जैन बना देना सरासर गलत है। किसी समुदाय में 25 करोड़ बौद्ध हों या 30 लाख जैन हों या 30 करोड़ ईसाई हों, इससे क्या प्रयोजन है? जिन समाजों की संख्या 50 करोड़ या उससे भी अधिक है, क्या वे एक बेहतर

आत्मिक जीवन जी रहे हैं? अगर आप भी किसी दिन 50 करोड़ हो गए तो इससे क्या होगा? इससे क्या फर्क पड़ता है कि आप कितने हैं? संख्या से कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई अर्थ नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है।

बुनियादी बात है कि बिना संख्या और बिना धर्म के नाम का सहारा लिए केवल महावीर जैसी महान चेतना की मूलभूत साधना को समझकर, आत्मिक शांति और परम आनंद को उपलब्ध हुआ जा सकता है। साधना या विधि को समझने के बाद इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि प्रयोग करने वाला व्यक्ति जैन है या नहीं। जैन धर्म को कन्वर्शन करने वाला, 'धर्म बदलने वाला धर्म' बनाने की जरूरत नहीं है। धर्म परिवर्तन करने की नासमझी दूसरे धर्मों ने की है परंतु इससे दूसरे धर्मों को क्या मिला? जब भी कोई एक धर्म दूसरे धर्मों के लोगों को अपने धर्म में कन्वर्ट करता है, तब मूलरूप से वह धर्म हिंसा का कृत्य कर रहा है। उसकी वृत्ति में हिंसा है। उसकी केंद्रीय वृत्ति यही कहती है कि दूसरे धर्म बुरे हैं, उन बुरे धर्म के लोगों को इस अच्छे धर्म में बदलना आवश्यक है। जब कोई आदमी या संस्था या धर्म दूसरे लोगों को एक किसी संगठन में लाकर बदलना चाहता है, तो वह निश्चित ही गलत रास्तों का उपयोग करता है।

कुछ संगठनों या धर्मों में तो पागलपन इस हद तक होता है कि साम, दाम, दंड, भेद, येन-केन-प्रकारेण... हर प्रकार से लोगों को बस बदल देना है, अहिंसक बनाना है। इस प्रकार के व्यवहार में तो बुनियाद में ही हिंसा हो गई। ऐसा धर्म, ऐसा विवश बदलाव, दुनिया को क्या अहिंसक बनायेगा? नहीं, किसी को बदलना नहीं है। किसी को अपने धर्म में नहीं लाना है। लेकिन महावीर या उन जैसी महान चेतनाओं ने जो विधियां या पद्धतियां दी हैं, उनसे दुनिया को भलीभांति अवगत कराना है। स्वयं के स्वार्थ को सिद्ध करने हेतु वे समस्त महान पद्धतियां आधी-अधूरी न समझाई जाएं और अंधेरे में कहीं खो न जाएं। बिना किसी भेदभाव के, प्रत्येक संभव प्रयत्न के द्वारा वे विधियां लोगों तक पहुंचें ताकि संपूर्ण मनुष्य जाति शांति और आनंद से वंचित न रह जाए। पक्षपात रहित होकर बांटने की यह वृत्ति अगर हम सब में पैदा हो सके तो अच्छा है।

सर्वप्रथम, मैं स्वयं को बदलूं। स्वयं को शांति से जोड़ूं और तब आंतरिक आनंद के कारण वह आनंद दूसरों में भी बांट दूं! ना कि अपने धर्म को फैलाने के लिए, संप्रदाय को प्रसिद्ध करने के लिए, बड़ी संख्या का मजा लेने के लिए या अपने अहंकार को पोषित करने के लिये दूसरों को अपने धर्म में परिवर्तित करूं। मुझे आनंद मिला है, यही आनंद मेरे मित्रों और संबंधियों को मिले, यही आनंद दुनिया के सब लोगों को मिले, इस भाव से आनंद के गहरे सूत्रों को बांटना होगा। कोई भी अंधेरे में ना भटके, हर जीव को आत्मिक जीवन की चिकित्सा देने के लिये हम आनंद की उस मूल पद्धति को लोगों तक पहुँचाएं। समस्त दुनिया तक पहुँचाएं। और इसी तरह धीरे-धीरे सारी दुनिया आनंदित हो सकती है। बिना जैन कहे, बिना हिंदु कहे या बिना बौद्ध कहे, सारी दुनिया परम आनंदित हो सकती है, कोई भी नाम देने की आवश्यकता ही नहीं है।

ये थोड़ी सी बातें, इस आग्रह से कह रहा हूँ कि मुझे लगता है और स्पष्ट दिखता है कि हमारे पास बहुत बड़ा विज्ञान है। इस विज्ञान को हम अंधेरे में छुपा कर रखें तो अक्षम्य अपराध होगा। इस विज्ञान का संबंध किताबें लिखने से नहीं है, धर्म-ग्रंथों की संख्या से नहीं हैं, पंडितों और पुस्तकालयों से नहीं है, बड़े-बड़े संग्रहालयों से नहीं हैं। इन सब बाहरी बातों से इस विज्ञान का कोई संबंध नहीं है। बाहर का समस्त ज्ञान मुर्दा है, लोग रिसर्च करते हैं या पी.एच.डी. या डी.लिट कर रहे हैं, उनमें कोई अर्थ नहीं है। उन पंडितों को यदि आप गहराई से समझ पाएं तो ये पंडित और मौलवी बस साधारण आदमी हैं, दुकानदार हैं। आखिर पंडित होने से क्या होता है? महावीर पंडित नहीं थे और दुनिया का कोई भी परम-ज्ञानी पंडित नहीं होता। पंडित कुछ किताबें पढ़कर, उधार ज्ञान का कचरा इकठ्ठा करता है और उसी को जमाता रहता है, सँवारता रहता है। ये पी.एच.डी. वगैरह सब बच्चों जैसी बातें हैं। उनमें कोई अर्थ नहीं है।

पंडित होने से कुछ नहीं होता। असली सवाल साधना का है। कितने जैन धर्म ग्रंथ प्रकाशित हुए इसका कोई औचित्य नहीं है। असंख्य ग्रंथ प्रकाशन के बाद भी क्या हम जैन साधना के मूल सूत्रों को नाम-मात्र भी अपने भीतर उतारने में सफल हुए हैं? क्या उस साधना के आधार पर हम दूसरे लोगों को आगे का कोई ठोस रास्ता बता पा रहे हैं? इसलिये साहित्य प्रकाशन से कुछ हल नहीं होता है। ईसाइयों ने अनगिनत बाइबिल बाँटी हैं। उससे क्या हुआ? ईसाई आपको बाइबिल दे जाते हैं, आप पढ़ते भी नहीं हैं और रख देते हैं। ऐसे ही आप किसी को महावीर वाणी देंगे, तो क्या होगा? क्या वह पढ़ेगा? कोई भी नहीं पढ़ता है। यह नासमझी भरे तर्क हैं।

आदमी फिर भी पहचाने जाते हैं, साहित्य कभी नहीं पहचाने जाते। आज तक लोगों में जो भी परिवर्तन हुए हैं, वे महान चेतनाओं के व्यक्तित्व, उनकी चुंबकीय शक्ति और उनके चमत्कारिक प्रभाव से हुए हैं। महावीर को साक्षात देखकर लोग जैन हुए थे। महावीर वाणी पुस्तक को देखकर कोई जैन नहीं होगा। महावीर की पंरपरा में हम आज तक कितने प्रतिभाशाली एवं शांत साधकों को पैदा कर पाए हैं? कितने लोगों की आँखों की ज्योति, उनके चेहरे का तेज, उनके विचार या उनका जीवन लोगों को आकर्षित कर पाता है? और कितने मुनि हैं जो लोगों के दिलों को छू लेते हैं? यह महत्वपूर्ण सवाल है।

अगर थोथी बातों के भ्रम को तोड़कर, हम थोड़े से भी निष्ठावान और आनंदित साधक अपने बीच पैदा कर पाते हैं तो में निश्चित ही आपसे कहता हूँ कि एक ऐसी दुनिया का जन्म हो सकता है जहां हम यह दावा कर सकते हैं कि चाहे तुम ईसाई हो, हिंदु हो, मुसलमान हो, लेकिन यह जैन साधना पद्धति सब के लिए उपयोगी होगी। तुम अपना धर्म हरगिज़ मत बदलो, जरूरत ही नहीं है। तुम मुसलमान ही रहो परंतु इस वैज्ञानिक जैन साधना का उपयोग भी करो। यह बात परस्पर सभी धर्मों पर लागू होती है। दरअसल, जैन साधना एक विज्ञान हे। इसका ईसाई या मुसलमान या हिंदु या बौद्ध होने से कोई प्रयोजन नहीं है। यह आत्म-शांति का एक विज्ञान है। एक आदमी ईसाई है और बीमार होता है, एलोपैथी का उपयोग करता है तो इससे उसके धर्म में क्या फर्क पड़ता है? वह अब भी ईसाई ही है, एलोपैथी दवा लेने से उसकी ईसाईयत नहीं छूटती।

एक छोटा सा जैनियों का समाज एक बहुत बड़ा काम कर सकता है। छोटे समाज की अपनी खूबी होती है क्योंकि उसमें क्रांतियाँ जल्दी हो जाती हैं। अगर ठीक से हम जैन विचारधारा को समझगें तो हमारे पास बहुत बड़ा मौका है कि हम इस जमीन पर अल्प-संख्यक होकर भी बहुत बड़ी क्रांति पैदा कर सकते हैं। जैन पहचाना जाना चाहिए अपने चेहरे के तेज से, विचारों की गहनता से और आनंदपूर्वक जीवन-शैली से। वह जहाँ भी जाए, लोग उसके व्यक्तित्व से आकर्षित हों। उसके अपने व्यक्तित्व की खिलावट के आधार पर ही हम अन्य लोगों को आमंत्रित कर सकते हैं कि जिस वैज्ञानिक पद्धति से हम शांत और आनंदित हुए हैं, तुम भी हो सकते हो। जैन-दर्शन शांति का एक विज्ञान है और इस विज्ञान के मूल विचार को हम पूरी दुनिया के कोने-कोन में पहुँचा सकते हैं।

ईश्वर करे, जिस महानतम पद्धति में हमें पैदा होने का मौका मिला है, उसे हम अपने जीवन में उतार पायें और इस शांति और आनंद के मार्ग से और लोगों को भी लाभान्वित कर सकें। यह परम आनंद की बात है कि जो आनंद हमें मिल रहा है उसे हम सब में बाँट दें।

मेरी बात को आपने शांति से सुना, उसके लिये मैं अनुग्रहित हूँ।